माननीय अध्यक्ष, लोक सभा श्रीमती मीरा कुमार जी, माननीय मुख्य मंत्री, राजस्थान श्री अशोक जी गहलोत, राज्य विधान सभाओं से पधारे माननीय अध्यक्ष एवं माननीय उपाध्यक्षगण, राज्य विधान परिषदों से पधारे माननीय सभापति एवं माननीय उप-सभापतिगण, मंत्रीगण, राजस्थान विधान सभा के माननीय सदस्यगण, लोक सभा एवं राज्य सभा के महासचिवगण, सम्माननीय मित्रो एवं उपस्थित महानुभाव।

संगोष्ठी के इस विशेष अवसर पर आप सभी का स्वागत करते हुए मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है। आगे बढ़ने से पहले मैं राजस्थान के मुख्य मंत्री श्री अशोक जी गहलोत को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होंने 76वें पीठासीन अधिकारी सम्मेलन के आयोजन में गहरी रुचि ली और उत्साह से सहयोग दिया जिससे यह आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न होने जा रहा है।

मुझे आप सभी को यह बताते हुए खुशी है कि दिनांक 20 सितम्बर को सम्पन्न हुए सचिवों के सम्मेलन में विधान मण्डलों की कार्यप्रणाली से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर विधान मण्डलों के सचिवों द्वारा सारगर्भित विचार-विमर्श किया गया। इसके साथ ही दिनांक 21 एवं 22 सितम्बर को पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में सामयिक विषयों के रूप में (1) Determination of maximum period for assent to Bills passed by the Legislature, (2) The Role of the Legislature in making Laws for Good Governance तथा (3) Era of Coalition Government - its Compulsions and Challenges विषयों पर विद्वान् पीठासीन अधिकारियों द्वारा विचार मंथन किया गया। मुझे विश्वास है कि इन महत्त्वपूर्ण विषयों पर हुई चर्चा से आने वाले समय में हम निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे।

पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में विचार-विमर्श की अंतिम कड़ी के रूप में आयोजित इस संगोष्ठी में हम 'नियंत्रण और संतुलन की संवैधानिक प्रणाली का सुदृढ़ीकरण (Strengthening the Constitutional Scheme of Checks and Balances)' विषय पर चर्चा करेंगे। जैसा कि हम सभी जानते हैं भारत के संविधान में शासन के तीनों अंगों - विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका - के कर्त्तव्यों, शक्तियों, क्षेत्राधिकार, उत्तरदायित्व तथा पारस्परिक सम्बन्धों को परिभाषित और परिसीमित किया गया है। शासन के इन तीनों अंगों से यह अपेक्षा की गई है कि वे संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप अपने-अपने कार्यक्षेत्र की निर्धारित सीमा में रहते हुए स्वतंत्रतापूर्वक अपने दायित्वों का निर्वहन करें। तीनों अंगों में कोई भी संप्रभु नहीं है। संप्रभुता केवल जनता में निहित है। तीनों अंग केवल अपने-अपने अधिकार क्षेत्र के सीमित दायरे में सर्वोच्च कहे जा सकते हैं। संविधान लागू होने के प्रारम्भिक वर्षों में ही ए.के. गोपालन के मामले में दिये गये विनिर्णय में न्यायमूर्ति श्री राघव राव ने शासन के तीनों अंगों के बीच संवैधानिक संतुलन के संबंध में कहा था कि :-

> 'तीनों अंगों में से प्रत्येक की शक्तियों का प्रयोग मूलभूत रूप से किया जाना चाहिए जो अलग-अलग उस अंग से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों और अन्य अंगों से सम्बन्धित उपबन्धों के अध्ययधीन हों। ... राज्य के एक अंग का सम्मान ही वह बात है जिससे संविधान के सुचारू कार्यकरण को सुनिश्चित किया जा सकता है और यही तो उसके गुणों को परखने की सच्ची कसौटी है चाहे उसके उपबन्धों का सैद्धान्तिक महत्त्व कुछ भी हो।'

प्रसिद्ध राजनीति शास्त्री जान लॉक के अनुसार कानून बनाना, कानूनों को लागू करना तथा कानून की व्याख्या करना तीनों अलग-अलग कृत्य हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न योग्यता वाले व्यक्ति ही दक्षता के साथ सम्पन्न कर सकते हैं। इस व्यवस्था का यह निहितार्थ भी निकलता है कि सरकार के तीनों ही अंग इस प्रकार से स्वशासित होने चाहिए कि उनकी जवाबदेही सुनिश्चित हो सके। यह जवाबदेही अन्ततोगत्वा संप्रभु जनता के प्रति है किन्तु आन्तरिक कार्यप्रणाली इस प्रकार होनी चाहिए कि किसी भी अंग का कोई भी भाग मनमानी न कर सके।

हमारे संविधान के अनुसार विधायिका का कार्य कानून बनाना है जबकि उन कानूनों की व्याख्या करना और उनकी संवैधानिकता निर्णीत करने का दायित्व न्यायपालिका को सौंपा गया है। शासन द्वारा सुनिश्चित की गई नीतियों का क्रियान्वयन तथा विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों का परिपालन कराने का दायित्व कार्यपालिका का है। तीनों अंग संविधान द्वारा निर्धारित एवं सुनिश्चित सीमाओं के अंतर्गत अपना-अपना कार्य करते हैं, किन्तु फिर भी ऐसी परिस्थितियाँ पैदा होने लगी हैं जिन्हें लेकर तीनों अंग अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेते हैं, परिणामस्वरूप इनके मध्य टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

हमारी संसदीय व्यवस्था में विधायिका और कार्यपालिका में शक्तियों का एक विशेष सम्मिश्रण एवं समन्वय है। मंत्रिमण्डल के सदस्य मूल रूप से विधायिका के सदस्य होते हैं और सदैव उसके अभिन्न अंग बने रहते हैं। मंत्रिमंडल विधायिका के प्रति उत्तरदायी होता है तथा अपने अस्तित्व के लिए उसी के विश्वास पर आश्रित रहता है। विधायिका का विश्वास खोते ही मंत्रिमंडल को त्याग-पत्र देना पड़ता है। संसदीय व्यवस्था में कार्यपालिका को विधायिका की ओर से शासन संचालन का काम सौंपा जाता है। विधायिका जनता का प्रतिनिधित्व करती है तथा समस्त विधायी एवं शासन सम्बन्धी कार्यों के लिये जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। इसी प्रकार कार्यपालिका अपने कार्य एवं व्यवहार के लिये विधायिका के प्रति उत्तरदायी रहकर उसी से कार्यवाही का प्राधिकार प्राप्त करती है।

विधायिका के पास कार्यपालिका की जवाबदेही को सुनिश्चित करने के लिये प्रक्रिया सम्बन्धी विकल्पों के रूप में प्रश्नकाल, बजट एवं राज्यपाल के अभिभाषण पर वाद-विवाद, सदन में लोक महत्त्व के मुद्दों को उठाने सम्बन्धी विविध प्रावधान तथा संसदीय समितियां उपलब्ध हैं। लेकिन विधायिका के कार्यपालिका पर नियंत्रण का अर्थ यह नहीं है कि उनके द्वारा कार्यपालिका के दैनन्दिन कार्यों में हस्तक्षेप किया जाये। नियंत्रण ऐसा होना चाहिए कि विधायिका कार्यपालिका के पथ-प्रदर्शक के रूप में कार्य करे।

संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार सैद्धान्तिक रूप से कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है, लेकिन व्यावहारिक रूप में देखा जाये तो हम पाते हैं कि शक्ति और सत्ता का केन्द्र कार्यपालिका के हाथों में पहुँच जाने के कारण विधायिका के क्षेत्राधिकार में निरन्तर कमी आती जा रही है। वास्तविकता तो यह है कि कार्यपालिका पर विधायिका का नियंत्रण सुनिश्चित होने के स्थान पर विधायिका ही कार्यपालिका के प्रभाव और नियंत्रण में आती जा रही है। आज तो स्थिति यह हो गई है कि विधायिका का विधि निर्माण और वित्तीय कार्य भी कार्यपालिका के क्षेत्र में आ गया है। कार्यपालिका ही एक प्रकार से कानून बनाती है तथा विधायिका के समक्ष विधायी और वित्तीय प्रस्ताव अनुमोदन के लिये प्रस्तुत करती है। नीतियों पर पर्याप्त विचार-विमर्श के बिना तथा किसी विशेष विधायी विरोध के बिना विधायिका कार्यपालिका के प्रस्तावों का अनुमोदन कर देती है। विधायन विधायिका का मुख्य काम माना जाता है किन्तु वर्तमान स्थिति में यह बहुत गौण हो गया है। आप सभी ने अनुभव किया होगा कि विधेयकों के पारण में बहुत कम समय लगता है जबकि सदन का अधिकांश समय अन्य कार्यों में व्यतीत होता है।

लोकतांत्रिक शासन पद्धति के सफल संचालन के लिए आवश्यक है कि सरकार के प्रत्येक अंग को अपने-अपने क्षेत्र में प्रभावपूर्ण ढंग से बिना किसी रोक-टोक के कार्य करने के अवसर मिलें और वे एक-दूसरे के प्रति पारस्परिक सहयोग की भावना से अनुप्राणित होकर कार्य करें।

संविधान द्वारा स्थापित चैक्स एण्ड बैलेन्सेज की व्यवस्था के अनुसार विधायिका को कार्यपालिका पर नियंत्रण का अधिकार है। संसद सदस्य अथवा राज्य विधान मण्डल के सदस्य अपने इस अधिकार का सफलतापूर्वक प्रयोग संसद अथवा विधान मण्डल की बैठकों के दौरान भलीभांति कर सकते हैं, परन्तु देखा गया है कि कार्यपालिका का यह प्रयास रहता है कि विधान मण्डलों के सदनों की बैठकें कम से कम हों। कार्यपालिका विधान सभा का सामना करने के अवसर यथासंभव टालती रहती है और संवैधानिक आवश्यकताओं की पूर्ति की लिए ही संसद अथवा विधान मण्डलों की बैठकें बुलाई जाती हैं।

विधायी निकायों की गरिमा को बनाये रखने तथा सदनों की कार्यवाहियों को सुचारू रूप से संचालित करने और सदस्यों के निर्भीक विचार-विमर्श के लिए संविधान के अनुच्छेद 105 और 194 में क्रमश: संसद एवं राज्य विधान मण्डलों और उनके सदस्यों के लिए शक्तियाँ, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियों की व्यवस्था की गई है। इन प्रावधानों के अन्तर्गत संविधान संसद, विधान मण्डल अथवा इनकी किसी समिति में दिये गये वक्तव्य अथवा किये गये मतदान के सम्बन्ध में किसी भी न्यायालय की कार्यवाही से उन्मुक्ति की गांरटी प्रदान करता है।

संविधान के अनुच्छेद 122 एवं 212 में क्रमश: संसद और राज्य विधान मण्डलों की कार्यवाहियों तथा उनके अधिकारियों और सदस्यों को न्यायालय की अधिकारिता से मुक्त रखा गया है। संविधान के अनुच्छेद 121 और 211 के अनुसार उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के कर्त्तव्य निर्वहन के सम्बन्ध में उनके आचरण पर चर्चा नहीं की जा सकती। विधान मण्डलों के प्रक्रिया नियमों में इस सम्बन्ध में समुचित प्रावधान किये गये हैं।

संविधान के उपबंधों, उसकी प्रक्रिया और कार्य संचालन के अध्यधीन संसद के दोनों सदनों और राज्य विधान मण्डलों के प्रत्येक सदन को अपनी प्रक्रिया और कार्य संचालन को विनियमित करने के लिए क्रमश: अनुच्छेद 118 और 208 के अन्तर्गत प्राधिकार दिये गये हैं। ये विशिष्ट प्राधिकार हैं और न्यायालय को इस प्रकार के नियमों अथवा उनके प्रशासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।

उच्चतम न्यायालय ने तेज किरण जैन बनाम एन. संजीव रेड्डी के मामले में सदन में अथवा उसकी किसी समिति की बैठक में कही गई किसी भी बात के सम्बन्ध में संसदीय कार्यवाही की उन्मुक्ति के सम्बन्ध में संवैधानिक गांरटी को मान्यता देते हुए 'किसी' शब्द को 'प्रत्येक' शब्द के समान माना है। उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा है कि -

> 'संसदीय शासन प्रणाली का सार यह है कि जनता के प्रतिनिधियों को बिना किसी वैधानिक परिणामों के भय के अपनी अभिव्यक्ति को मुक्त रूप से व्यक्त करने की छूट होनी चाहिए। वे जो कुछ भी कहे वह प्रक्रिया नियमों के अनुशासन, उनकी सदाशयता और अध्यक्ष द्वारा कार्यवाही नियंत्रण के दायरे में हो। इस सम्बन्ध में न्यायालय कुछ भी नहीं कह सकते और उन्हें वास्तव में कहना भी नहीं चाहिए।'

संविधान के नियंत्रण और संतुलन के सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य न्यायपालिका और विधायिका को स्वतंत्रापूर्वक एक-दूसरे के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप किये बिना कार्य करना है। शासन के इन दोनों अंगों के बीच बहुत ही झीना-सा परदा है। इसलिए दोनों अंग आपसी विश्वास और सम्मान के साथ कार्य करें तो दोनों एक-दूसरे की स्वतंत्रता, गरिमा और क्षेत्राधिकार को अक्षुण्ण रखने में सहायक हो सकते हैं। न्यायपालिका के मामले में केवल न्यायिक कार्यवाहियों को ही विधायिका से उन्मुक्ति है, न्यायालयों के निर्णयों को इसकी छूट नहीं है, अर्थात् न्यायालय द्वारा निर्णय दिये जाने के बाद उन पर विधायिका के सदनों में चर्चा हो सकती है। लेकिन विधायिका के मामले में सदन की कार्यवाही और उसके निर्णय दोनों पर बाहरी हस्तक्षेप से छूट होती है।

वर्ष 2007 में तिरुवअनन्तपुरम में आयोजित पीठासीन अधिकारियों के सम्मलेन में विधायकिा और न्यापालिका के सम्बन्धों पर चर्चा के बाद पारित सर्वसम्मत संकल्प में भी यही कहा गया था कि संविधान में ऐसा कोई 'महा अंग' (सुपर ऑर्गन) नहीं है जिसे दूसरे के क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप करने का अधिकार है, क्योंकि विधायिका एक सर्वोच्च विधायी और प्रतिनिधिक निकाय है जो इस देश के करोड़ों लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम है उसे किसी ऐसे प्राधिकारी, जो जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं है, के बिना किसी हस्तक्षेप के कार्य करना होता है । राज्य के सभी अंगों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे संविधान द्वारा निर्धारित कार्यक्षेत्र में रहते हुए सौंपे गये दायित्वों का निर्वहन करें जिससे देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था को सद्भावनापूर्ण तरीके से सुनिश्चित किया जा सके।

भारत के संविधान ने शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को कठोर रूप में स्वीकार नहीं किया है जिससे शासन के तीनों अंगों की अधिकारिता के प्रश्न पर मतभेद व तनाव होना अस्वाभाविक नहीं है। इसलिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि तीनों अंगों की अधिकारिता में संतुलन बनाया व रखा जाये। विधायिका के सदनों में जैसी उत्तेजना के वातावरण में काम होता है, उसके मुकाबले में न्यायालय में अत्यंत शांत वातावरण में काम होता है और बहस में प्रत्येक बिंदु के समर्थन में किसी न किसी कारण, तर्क व पूर्वादोहरणों का उल्लेख करना होता है। अतएव उच्चतम न्यायालय से ही शासन के तीनों अंगों को उनके अधिकारों के साथ-साथ उनके कर्त्तव्यों की याद दिलाते हुए उनकी अधिकारिता में समन्वय व संतुलन स्थापित करने का काम करने की अपेक्षा की जा सकती है।

विधायी कार्य में विधायिका को सर्वोच्चता ही नहीं अपितु विशेषाधिकार भी प्राप्त है। इन अधिकारों के हनन के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को, चाहे वह मंत्री ही क्यों न हो, दण्डित करने का अधिकार प्राप्त है। अपने सदस्यों के दुराचरण पर दण्ड देने का उसका अधिकार सर्वोपरि है। सदन, उसका अध्यक्ष अथवा सभापति बहुमत के निर्णय के आधार पर दण्ड दे सकता है। भारत सहित विश्व के अनेक लोकतांत्रिक देशों की विधायिकाओं ने सैकड़ों बार ऐसे दण्ड दिए हैं लेकिन आपराधिक प्रकरणों में विधायिका द्वारा किसी को दण्डित किए जाने का उदाहरण नहीं मिलेगा। आपराधिक प्रकरणों के निर्धारण के लिए विधायिकाओं द्वारा अनेक प्रकार के कानून बनाये गये हैं जिनके तहत गठित न्यायालय उन पर विचारण का कार्य करते हैं और दोष सिद्ध होने पर जुर्माना अथवा अन्य सजा देते हैं।

नियंत्रण एवं संतुलन के संवैधानिक सिद्धान्त को सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक है कि कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका संविधान-सम्मत अपने दायरे में प्रदत्त शक्तियों को दृष्टिगत रखते हुए विवादास्पद विषयों में आपसी सामंजस्य एवं सूझबूझ का परिचय देते हुए अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करें। संसदीय लोकतंत्र में संविधान ही सर्वोच्च है। विधायिका के बिना संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली सफल नहीं हो सकती। विधायिका की स्वतंत्रता और स्वायत्तता बनाये रखने की जिम्मेदारी तीनों अंगों की है और उसके लिए आवश्यक है कि सभी अंग अपनी श्रेष्ठता के अहं को

जताने के बजाए संयम को आत्मसात कर सद्‌भावना, सामंजस्य और संतुलन के मूल मंत्र को अपनाते हुए कार्य करें। यहां वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अरुण प्रकाश चटर्जी के उस कथन का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा जिसमें उन्होंने कहा है कि ह्न

> ''हमारे संविधान में विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका अपने-अपने क्षेत्रों में सर्वोच्च हैं, इनमें से किसी को भी संविधान द्वारा स्वीकृत सीमा के अतिरिक्त दूसरे के अधिकार क्षेत्र में दखल नहीं देना चाहिए। साथ ही यदि किसी मामले में दो निर्वचन हों, जिनमें से एक विधायिका की स्वतंत्रता को शासन के अन्य दो अंगों के हस्तक्षेप से संरक्षित करता हो तथा दूसरा ऐसे दखल का समर्थन करता हो तो प्रथम को स्वीकार किया जाना तीनों अंगों के नाजुक संतुलन को बनाये रखने के लिए हितकारी होगा और यह मूल अधिकारों की कीमत पर भी किया जाना चाहिए।''

विधायिका और न्यायपालिका के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों के संवर्धन हेतु उपायों सम्बन्धी पीठासीन अधिकारियों की समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा है कि विधान मण्डलों को उचित गरिमा, शिष्टाचार और स्वतंत्रता से अपना कार्य करने की आजादी होनी चाहिए। समिति का यह भी सुझाव था कि जिस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 121/211 के द्वारा उच्चतम न्यायालय अथवा किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कर्त्तव्यों के निर्वहन में उनके आचरण के सम्बन्ध में संसद और राज्य विधान मण्डलों में चर्चा किये जाने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है उसी प्रकार विधायिका के पीठासीन अधिकारियों के कर्त्तव्य निर्वहन के सम्बन्ध में भी संविधान में उचित उपबन्ध किये जाने चाहिए जिससे पीठासीन अधिकारियों को भी अपने-अपने सदनों की स्वतंत्रता और गरिमा की रक्षा सुनिश्चित करने में सहायता मिल सके। इससे विधायिका और न्यायपालिका के बीच नियंत्रण एवं संतुलन का सिद्धान्त और अधिक सुदृढ़ होगा।

संविधान द्वारा विधायिका और न्यायपालिका को विशेष कर्त्तव्य और दायित्व सौंपे गये हैं और इनकी भूमिका एक दूसरे के लिए पूरक के रूप में नियत की गई है। अतः यह देश के लोकतांत्रिक स्वरूप के लिए अत्यंत हितकारी होगा यदि दोनों अंग परस्पर विश्वास और सद्‌भावपूर्वक एक-दूसरे की स्वतंत्रता, गरिमा और क्षेत्राधिकार का ध्यान रखते हुए कार्य करें।

अंत में संगोष्ठी की सफलता की कामना करते हुए मैं आशा करता हूँ कि संगोष्ठी के सभी सहभागी अपने अमूल्य विचार इस प्रकार से व्यक्त करेंगे जिससे इस सम्मेलन का समापन एक शानदार तरीके से हो।

धन्यवाद।

❑❑❑

Hon'ble Speaker, Lok Sabha, Smt. Meira Kumar; Hon'ble Chief Minister, Sh. Ashok Gehlot;, Distinguished delegates; Respected Ministers and Hon'ble Members of Rajasthan Legislative Assembly; Secretaries- General of Rajya Sabha and Lok Sabha, distinguished dignitaries and friends:

I have great pleasure in offering a hearty welcome to the distinguished dignitaries on this special occasion of today's Symposium on the subject "Strengthening the Constitutional Scheme of Checks and Balances".

Before proceeding further, I take this opportunity to express my profound gratitude to Hon'ble Chief Minister of Rajasthan Shri Ashok Gehlot for his keen interest and cooperation extended in organizing this 76th Conference and am deeply indebted to him for always being a great source of inspiration and encouragement at every stage of planning of this event.

I am glad to share with you that in the Conference of the Secretaries held on the 20th September vital in-depth discussions took place on aspects concerning the functional and the procedural aspects of the Legislative Bodies of India. Along with this, issues viz.

1. Determination of Maximum period for assent to Bills passed by the Legislature.
2. The Role of the Legislature in making Laws for Good Governance and
3. Era of Coalition Government -Its Compulsions and Challenges

- were deliberated upon by the distinguished Presiding Officers on the 21st and 22nd September. I am sure that such thought provoking discussions on important topics will certainly prove beneficial for us.

"Strengthening the Constitutional Scheme of Checks and Balances" will be our today's theme for focussed discussion during the symposium as the concluding part of deliberations in the Conference. As we are aware, the Indian Constitution has categorically specified the powers, responsibilities, and domains of its three administrative elements- the Executive, Legislature and the Judiciary, very well elucidating the separation of powers as well as focussing upon their spheres of mutual conduct and relationship. Stressing the underlying importance of harmonious co-existence of the three wings of administration, it is emphasised upon them that they function interdependently, efficiently discharging their legitimate functions and indispensable roles in the governance process but in their appropriate jurisdictions within the constitutional provisions. Neither is superior. The supremacy had been reposed and restored in the public. The people are paramount. All the three elements can be considered to be supreme in their respective spheres. During the very initial years of the adoption of the Constitution, in the A.K. Gopalan Case, Justice Shri Raghav Rao had quite emphatically remarked regarding the constitutional balance between the three organs of government:-

"The powers of each one of the three organs have to be exercised as fundamentally subject to the provisions of the constitution relating to that organ individually as well as to the provisions relating to other organs… It is the respect that is accorded by one organ of the State to the others that ensures that healthy working of the constitution which is the acid test of its merits whatever the paper value of its provisions"

The famous Political Scientist John Locke is of the opinion that law-making, enforcing the law and interpretation of law are different functions to be performed to perfection exclusively by experts having desirable capabilities. The underlying aim is that the three organs of the state inherently have systematic and coherent administration with adherence to the rule of law that would amount to transparency and accountability. This accountability is in favour of the people for betterment of society but ultimately the internal functioning of each organ should ensure adherence to function

within the established parameters and constitutional bounds without overstepping their limits in accordance with the spirit of law.

Our Constitution has entrusted the role of a policy and law maker to the Legislature whereas the onus of interpretation of the law and its constitutionality lie with the Judiciary. The executive has been given the responsibility for the execution of the policies made by the government and ensuring the adherence to the rule of law. Although the three organs perform their constitutionally mandated roles, sometimes such circumstances arise that there appears an overlapping of functions or interference in the sphere of the other so much so that all three make it their prestige issue leading to conflicting situations.

In our parliamentary democratic system, presupposing the sovereignty of people a balance has been maintained in the fusion and distribution of powers among the executive and the legislature to ensure their cooperative coexistence. The ministers of the cabinet are fundamentally the legislative members of the ruling party or the ruling coalition and always be its inseparable part. The council of ministers are accountable to the legislature and is always dependent on it for its existence. If it loses the confidence of the legislature the council of ministers have to resign. The Executive is entrusted by the legislature with the responsibility to govern and execute the laws and a continued cooperation between executive and legislature is required for the government to survive and be effective in carrying out its programmes. The representative legislature in turn is accountable to the people. Thus Executive is responsible for its actions to the legislature and also its authority to function from the Legislature. Thus it is collectively accountable to the legislature.

To ensure the accountability of the Executive, Legislature resorts to several procedural devices like Questions Hour, Motions, Discussion on Budget and the Address by the Governor, various provisions for calling attention to matters of public Importance in the House and thorough scrutiny through its various Parliamentary Committees. However, legislature's control over the executive should not in any way mean that it interferes in its routine administration but their control should be such that the legislature performs a torch bearer's role.

Principally according to the constitutional arrangements the executive is accountable to the legislature but practically in conformity with its function to govern and implement laws passed or framed by the legislature it is performing a vital role and as a result has led to shrinkage of the legislature's jurisdiction. Actually, the legislature is gradually giving away by being influenced, commanded and controlled by the executive. The fact is that indirectly the executive drafts the laws and presents before the legislative and the financial proposals for approval. The drafts or legislative proposals as they emanate from the administrative corridors are approved without proper and in-depth discussions and without any substantive reservations and objections in the House. Law making which is considered to be the prime responsibility of the legislature has assumed a very miniscule dimension today. As we have experienced generally these days the passing of the Bills actually takes relatively very less time and most of the time is spent in other modalities.

It is essential and desirable for the successful functioning of the democratic administration that each organ of the State gets the opportunity to effectively perform its exclusive assigned roles independently without any undue interference, cooperating and functioning in coordination with the other organs exhibiting mutual respect.

The checks and balances system as established by the Constitution has vested the authority with the legislature to ensure and enforce executive accountability. The members of the Parliament and the legislatures can exercise this right forcefully in the House or during the legislative sittings, instead it has been observed that the executive tries to minimise the number of sittings of the legislature and hence the meetings of the House or the Parliament are summoned only for the sake of the constitutional provisions.

To uphold the dignity of the Legislative bodies, manage smooth conduct of the business of the House in sessions and encourage frank genuine discussions among the legislators, Articles 105 and 194 of our Constitution explicitly articulate the powers, privileges and exemption/liberties for the members of Parliament and Legislatures, respectively. Under these provisions, Constitution has guaranteed exemption from any judicial subjugation for any statement given on the floor of the House in session in the Parliament, Legislatures or any Committee thereof or in relation to any voting done therefor.

The Articles 122 and 212 of the Constitution have safeguarded the proceedings and officials as well as the members of the Parliament and the Legislative Assemblies, respectively, keeping them free from the judicial purview. As per the Articles 121 and 211 the conduct of Justices of the Supreme Court regarding the discharge of their duties cannot be debated /discussed/investigated. The rules of Procedure and Conduct of Business of the Legislatures/Legislative Bodies have appropriate provisions incorporated for this.

According to the provisions under Articles 118 and 208 of the Constitution, both the Houses of the Parliament and every House of the Legislatures, respectively, have been delegated the power and accorded the rights to regularise and manage its Rules of Procedure and Conduct of the Business. These are the privileges and the judiciary has got no powers and the right to intervene or interfere in these rules or administration thereof.

Recognizing the constitutional guarantee rendered for anything said in the House or in the meeting of any of its committees concerning the Tej Kiran V/S Neelam Sanjiva Reddy Case the Supreme Court upheld that the word 'anything ' is of the widest import and is equivalent to 'everything'. The Supreme Court also said that the essence of parliamentary system of Government is that people's representatives should be free to express themselves without any fear of legal consequences. What they say is only subject to the discipline of the members and the control of proceedings by the Speaker. The Courts have no say in the matter and should really have none.

The principal aim of the system of checks and balances is to facilitate independent functioning of the Legislature and the Executive minimising the occurrences of interference. There is a very thin demarcation between these two elements of State, hence their working in conjunction coordinating and cooperating with each other would result in respect for each other's independence and enhance the dignity of the institutions. The judiciary also enjoys exemption for its action from discussions in the Legislatures but the decisions given by the courts can still be taken up as subject for discussion in the legislatures. Legislatures have the distinction of its functioning of the House as well as the decisions taken therein are not allowed to be discussed or interfered in by the external elements.

In the Presiding Officers conference held at Thiruvananthapuram in the year on the theme of relationship between the Legislature and the Judiciary, it was agreed upon in the unanimously passed resolution stating: "as the constitution does not contemplate any super organ having overriding authority over the other, the Legislature, as the supreme legislative and representative body which gives voice to the hopes and aspirations of the teeming millions of this country, is entitled to function without any interference from any other authority which is not accountable to the people and that all organs of the State strictly adhere to the functions and jurisdiction assigned to them by the Constitution so as to ensure the harmonious working of the democratic system in the country."

The Constitution has not adopted rigidly the doctrine of separation of powers, so the differences cropping up due to lack of clear demarcation of the functions among the three organs of the State are not unnatural. It therefore assumes even greater importance to inculcate and maintain a balance between the functions and jurisdictions of the three elements of the State. As against the excited and turbulent environment prevailing in the Houses of the Legislatures, the Judiciary functions in a

poised atmosphere where the discussions and each argument is required to be supported with evidences and precedents. Hence it is expected from the Supreme Court to remind the three organs of the government their duties and responsibilities and to maintain cohesiveness and cooperation in their interdependent functions.

The Legislatures have not only the supremacy but even the special privileges as far as the legislations are concerned. It has got the power to punish for violation of rights for the person even to any minister who indulges in the violation of these powers. It has got the powers to penalize its members for any misconduct. The House, its Speaker or even the Chairperson can give the punishment based on the decision taken by majority in the House. There have been innumerable instances where such punishments have been accorded to the members in India and world over but there have been no instances of punishments on account of criminal incidences. Such criminal instances are dealt with according to stringent laws framed and formed by the legislative bodies for the purpose and the Judiciary considers such cases and decides upon declaring the penalties or punishments as it deems fit.

It is imperative for the Executive, the Legislature and the Judiciary to strengthen the system of checks and balances by working in consonance with the constitutional provisions taking due cognizance of their functional spheres and act in tandem with each other especially in the controversial matters. The Constitution is prime in any parliamentary democracy and it can not survive without the legislature. It is the collective responsibility of all three elements of the State to preserve the independence and autonomy of the Legislature imbibing cooperation and coordination in their balanced functioning by virtue of self control rather than asserting their dominance. It would be pertinent to quote here Shri Arun Prakash Chatterjee, a senior advocate who said that:-

"In our Constitution, the legislature and the executive are supreme in their own spheres and fields and none of them should encroach on the spheres of others except to the extent allowed expressly by the Constitution. Moreover, if there are two interpretations, one preserving the independence of the legislature from interference by either two other limbs of such encroachment, the first should be adopted in the interest of preserving the delicate balance among the three even at the cost of Fundamental Rights".

The Committee of the Presiding Officers formed for suggesting ways for promotion and enhancement of the cordial relationship between the executive and the legislature has reported that the legislatures should have the freedom to function free in a disciplined and dignified manner. In this regard, the Committee also took note of the Article 121/211 of the Constitution that imposes a restriction on discussion in Parliament / State Legislatures with respect to the conduct of any Judge of the Supreme Court or of a High Court in the discharge of his duties. The Committee feels that a reciprocal provision with respect to the Presiding Officers may help in further safeguarding the independence and dignity of the Presiding Officers as also of their respective Houses. The Committee, therefore, recommend suitable amendments to the Constitution to that effect.

The Constitution had entrusted special roles and responsibilities to the Legislatures and the Judiciary and has expected them to assume supplementary role for the other. This system would be conducive for the democratic system of our country if these organs complement each other cooperating with dignity and function in coordination with each other.

Wishing the symposium a meaningful success I would submit that the symposium would be enriched with valuable insight of the distinguished dignitaries.

Thank you.

भारत में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों का
76वां सम्मेलन

श्री दीपेन्द्र सिंह शेखावत
माननीय अध्यक्ष, राजस्थान विधान सभा द्वारा
'नियंत्रण और संतुलन की संवैधानिक प्रणाली का सुदृढ़ीकरण'
विषय पर आयोजित संगोष्ठी के अवसर पर

स्वागत भाषण

शुक्रवार, दिनांक 23 सितम्बर, 2011
जयपुर (राजस्थान)

76th Conference of Presiding Officers of Legislative Bodies in India

WELCOME ADDRESS

by

Shri Deependra Singh Shekhawat
Hon'ble Speaker, Rajasthan Legislative Assembly
on the occasion of the Symposium on
"Strengthening Constitutional Scheme of Checks and Balances"

Friday, 23rd September, 2011

JAIPUR (Rajasthan)